यूनिट 2 भारतीय संगीत में राग

सूचीपत्र

2.0 **भूमिका**

2.1 **अधिगम के परिणाम**

2.2 **भारतीय संगीत में राग की अवधारणा**

2.3 **राग का अर्थ और परिभाषा**

2.4 **राग का उद्देश्य**

2.5 **राग के नियम**

2.6 **राग निष्पादन के तत्व**

2.7 **रागों की जाति**

2.8 **सारांश**

2.9 **स्वमुल्यांकन प्रश्न**

2.0 भूमिका

राग भारतीय संगीत की ऐसी प्राचीन परंपरा है जिस पर संपूर्ण भारतीय संगीत की नीव स्थित है। यह एक ऐसी व्यवस्था है जो अनेक विद्वानों के विचारों के गहरे मंथन का फल है। विश्व संगीत को यह भारतीय संगीत का एक अनुपम देन है। प्राचीन काल से बहती आ रही भारतीय संगीत की निरंतर धारा में समय समय पर कई बदलाव आये है। पर राग एक ऐसी अवधारणा है जिसे सभी काल के संगीतज्ञों ने स्वीकार किया है। राग ही वह केंद्र है जिसके आधार पर भारतीय संगीत के सभी पहलुओं का विकास होता है। सम्पूर्ण भारतीय संगीत राग की परिकल्पना पर आधारित है। यह भारतीय संगीत की एक अनुपम अवधारणा है जिसमे संगीत के समस्त सौन्दर्यात्मक तत्त्व समाहित है। राग संगीत कला को प्रदर्शित करने का एक ऐसा माध्यम है जिस में भाषा, भाव स्वर, लय कल्पना तथा कलाकार की कुशलता, इन सभी का सुचारु रूप से सामंजस्य दिखाई देता है। इस अध्याय में विद्यार्थी भारतीय संगीत में राग की अवधारणा के संबंध में जानकारी प्राप्त करेंगे ।

2.1 अधिगम के परिणाम

इस अध्याय को पड़ने के बाद विद्यार्थी -

- भारतीय संगीत मे राग के महत्व को समझ पाएंगे
- भारतीय संगीत में राग की अवधारणा को बता पाएंगे
- राग की परिभाषा बता पाएंगे
- राग निर्मिती के नियमों को बता पाएंगे
- राग निष्पादन के प्रमुख घटकों को जान पाएंगे और विस्तृत रूप से समझा पाएंगे

- राग की जातियों का वर्णन कर पाएंगे

2.2 भारतीय संगीत में राग की अवधारणा

संगीत को प्रदर्शित करने का एकमात्र उपाय संगीत के उपयोगी ध्वनि, अर्थात नाद या स्वर है। रागों के निर्माण का आधार भी स्वर ही है। राग को एक संगीतमय ध्वनियों से बनाई हुई सजीव मूर्ति के रूप में कल्पना किया जा सकता है जिस के प्रस्तुतिकरण में विशेष स्वर समूहों का प्रयोग किया जाता है। पर प्रश्न यह है कि यदि स्वर समूहों से राग का निर्माण होता है तो क्या किसी भी स्वर समूह को हम राग कह सकते हैं ? नहीं। एक विशेष स्वर समूह को राग की आख्या देने से पहले उस स्वर समूह के कुछ विशेष लक्षण देखे जाते हैं। अगर वे गुण उस विशेष स्वर समूह न मिले तो उसे केवल एक धुन ही माना जाएगा। तो वे क्या विशेष गुण हैं जो एक स्वर समूह को राग बनाता है ? इसे हम जानेंगे इस अध्याय में पर उससे पहले हम "राग" शब्द को समझ लें।

राग का अर्थ और परिभाषा

'स्वर और वर्ण से विभूषित ध्वनि जो मनुष्य के मन का रंजन करे, राग कहलाता है' – संगीत रत्नाकर

राग शब्द मूलतः संस्कृत भाषा से लिया गया है। इस शब्द की उत्पत्ति रञ्ज् धातु से हुई है। रञ्ज् धातु या शब्द का संबंध रंजकता से है। यह ध्यान देने की बात है कि रञ्ज् शब्द रंग से जुड़ा हुआ है। संगीत शास्त्र से परे राग शब्द भी रंग के संदर्भ मे ही प्रयोग किया जाता है। जैसे 'अंगराग,' जिसे प्राचीन काल मे शारीरिक सौन्दर्य को उभारने के लिए प्रयोग मे लाया जाता था। एक और उदाहरण से समझें कि यदि साहित्य में 'अस्तराग से रंजित आकाश' कहा जाए तो उसका अर्थ होगा सूर्यास्त के लाल रंग से रंगा हुआ आकाश। तो इस से हम देख पाते है कि राग शब्द का अर्थ रंग है और रञ्ज् शब्द का अर्थ रंगना है। तो संगीत के संदर्भ में राग और रंजकता शब्द को हम कैसे समझें ? इसे हम इस तरह समझ सकते हैं की हमें जो भी अच्छा लगता है या जिससे हमारा मन हर्षित होता है उस से हम प्रभावित होते हैं और पारंपरिक रूप से उस प्रभाव को हम रंग के रूप में समझते हैं। अर्थात मन पर रंग चढ़ जाना – ऐसा समझते हैं। रञ्ज शब्द को कला के परिप्रेक्ष में देखा जाए तो संगीत में रञ्जक उसे कहते है, जो संगीत मानसिक सुख और आनंद से मन को रंजित कर दे और इस अर्थ में भी रंगने का अर्थ सन्निहित है ही। दूसरे शब्दों में राग में रञ्जक तत्व होना अनिवार्य है। अब इस चर्चा के आधार पर राग की परिभाषा को ऐसे समझें कि – **वह विशेष स्वर समूह जिसमें मनुष्य के मन में रंजकता उत्पन्न करने की क्षमता हो उसे ही राग कहते हैं।**

राग शब्द का पारिभाषिक रूप में प्रयोग सर्वप्रथम मतंगकृत बृहद्देशी (समय-लगभग 7वीं 8वीं शताब्दि) में हुआ है। यद्यपि मतंग मुनि से पूर्व भी संगीत में राग शब्द का उल्लेख हुआ है, परन्तु पारिभाषिक रूप में राग शब्द का स्पष्टीकरण बृहद्देशी से होता है। मतंग के अनुसार -
योऽसौ ध्वनि विशेषस्तु स्वरवर्णविभूषितः

रञ्जको जनचित्तानां स राग उदाहृतः

अर्थात षड़ज आदि स्वरों तथा स्थायी इत्यादि वर्णों से विभूषित ऐसी ध्वनि की रचना, जिससे मनुष्य के मन का रञ्जन होता है, उसे राग कहा जाता है।

उपर्युक्त मतंग के वचन में "ध्वनिविशेषस्तु" से तात्पर्य सात स्वरों (षड़ज, ऋषभ आदि) से है, तथा वर्ण से तात्पर्य संगीत में प्रयुक्त होने वाले विभिन्न स्वर व्यवस्थायों (स्थायी-आरोही-अवरोही-संचारी) के प्रयोग से है। राग की परिभाषा के मूल अर्थ को इसी प्रकार ध्यान में रखते हुए आगे आने वाले सभी ग्रंथकारों ने थोड़े बहुत शब्दों के फेर बदल से राग की परिभाषा को इसी प्रकार से समझाया है।

राग का उद्देश्य -

अभी हमने पढ़ा कि संगीतोपयोगी ध्वनि तथा स्वरवर्ण से विभूषित रचना जो जन के चित्त का रंजन करती है, वह राग है। तो ऐसे में राग का एक ही उद्देश्य होना चाहिए और वह है मानव मन को आनंद की अनुभूति कराना । सप्त स्वरों तथा बाईस श्रुतियों के आधार पर समस्त राग का निर्माण होता है, जो भिन्न प्रकार की मधुरता का निर्माण करता है। राग का मूलभूत तत्व या घटक सप्तक के सात शुद्ध और पाँच विकृत स्वर हैं फिर भी ये एक दूसरे से पृथक होते है, जिससे अलग अलग रसानुभूति होती है।

भारतीय संगीत की समस्त गान विधाएं किसी न किसी राग के स्वरों पर आधरित होती है । राग, भावाभिव्यक्ति का वह सक्षम माध्यम है, जो गायक व वादक के हृदय के उद्गारों को अभिव्यक्त कर श्रोता को भी उसी मनोदशा में निमग्न कर देता है । अतः अन्य शब्दों में राग का उद्देश्य स्वर समूह के माध्यम से श्रोताओं के मन में विभिन्न रस के अनुभूतिओं को उजागर करना है । यही संगीत गायन विधा हो तो गीत के साहित्य या बोलों के भाव को राग और अधिक प्रभावशाली बनाता है । यदि वाद्यसंगीत हो तो साहित्य के सहारे के बिना भी राग इच्छित रस कि अनुभूति उत्पन्न करने में सक्षम है ।

राग के नियम-

राग की रचना कुछ नियमों के आधार पर होती है। राग अपनी सीमा में बंधा होता है अतः राग में कुछ बातों का होना आवश्यक है, जिससे उसके एक सुव्यवस्थित रूप का निर्माण होता है।

1. राग किसी थाट से उत्पन्न होना चाहिए
2. ध्वनि का विशिष्ट रचना होन चाहिए
3. राग की निर्मिती स्वर तथा वर्ण के आधार पर हो
4. राग में रञ्जकता अर्थात् सुन्दरता हो दूसरे शब्दों में मन को अच्छा लगने वाला हो
5. राग में कम से कम पांच स्वरों का प्रयोग होने चाहिए
6. राग में एक ही स्वर के दो रूप (कोमल तथा तीव्र) एक साथ लेने का शास्त्रकारों ने विरोध किया है। (परंतु प्रचलित रागों में नियम के अपवाद के रूप में सुंदरता बढ़ाने के लिए कुशल गायक-वादक कभी कभी कुछ एक रागों में एक स्वर के दो रूप का प्रयोग एक के बाद एक – कर लेते है जैसे – राग मियां मल्हार में कोमल तथा शुद्ध दोनों निषाद या राग जोग में दोनों गांधार का ।)
7. राग में आरोह तथा अवरोह होना आवश्यक है जिसके आधार पर राग का ढाँचा निर्मित होता है।
8. किसी भी राग में सा स्वर वर्जित नही होता।
9. किसी भी राग में मध्यम तथा पंचम एक साथ वर्जित नही होते।
10. राग में वादी-संवादी स्वर अवश्य होते है, जिन्हें प्रमुख रूप से दर्शाया जाता है।

इस प्रकार इन नियमों के आधार पर राग को एक निश्चित रूप प्राप्त होता है।

राग निष्पादन **के तत्व-**

राग, एक सजीव तथा विशिष्ट स्वर-रचना है। प्रत्येक रचना के कुछ नियम, कुछ तत्व, विशिष्ट अवयव तथा सिद्धांत होते है जिस के द्वारा उस रचना का सही रूप से निष्पादन किया जाता है । आइए अब जाने राग किस प्रकार से निष्पादित की जाती है अर्थात सभी राग नियमों को बरतते हुए उसे किस प्रकार से गाया, राग में लगने वाले कौन-कौन से घटक इसमें सहायक होते है । इस प्रक्रिया से राग से सम्बन्धित कई नई संज्ञाओं से भी हम परिचित होंगे।

- राग गायन में सर्वप्रथम नाद अर्थात संगीत के उपयोगी ध्वनि का स्थान है। पिछले अध्याय मे अपने जाना की हमारे संगीत शास्त्रकार प्राचीन समय से ही बाईस नाद या बाईस संगीत उपयोगी ध्वनि को श्रुति के रूप में स्वीकृति प्रदान की है । ये श्रुतियाँ क्रमशः एक से दूसरा ऊंचा, दूसरे से तीसरा ऊंचा इस

प्रकार चढ़ते क्रम से सूक्ष्म अंतराल पर होते हैं। इन्हीं में से बारह श्रुतियों को स्वर की संज्ञा दी गई है जिनमें से सात शुद्ध तथा पांच विकृत स्वर हैं जिन्हें गायन-वादन में प्रयुक्त किया जाने लगा। इनके नाम हैं - षड्ज, ऋषभ, गंधार, मध्यम, पंचम, धैवत तथा निषाद है, संक्षेप में इन्हें ही सा, रे, ग, म, प, ध, नि कहा जाता है। इसके अतिरिक्त इन शुद्ध स्वरों पांच विकृत रूप हैं कोमल रे, कोमल ग, तीव्र म, कोमल ध, तथा कोमल नि। इन्ही बारह स्वरों में कुछ स्वरों को चुनकर राग की निमिति होती है। भिन्न-भिन्न रागों में भिन्न-भिन्न स्वरों और स्वर समूहों के प्रयोग से राग एक दूसरे से पृथक पहचाने जाते हैं।

इस बात को यदि हम शब्दों के बनावट से समझना चाहें तो ऐसे समझ सकते हैं – सोच लीजिए के आपके पास तीन अक्षर हैं – क, म, ल। आप इन तीन अक्षरों से 'कलम' शब्द भी बना सकते हैं और 'कमल' शब्द भी। दोनों ही शब्दों में घटक अक्षर समान हैं मगर फिर भी दो बिल्कुल अलग शब्द हैं, जिनका वस्तुगत रूप का प्रयोग भी अलग अलग स्थान पर अलग प्रयोजन से होता है। इसके अतिरिक्त दोनों वस्तुओं की कल्पना करें तो मस्तिष्क में अलग अलग वातावरण की छवि उभरती है। तो जिस प्रकार हिन्दी के 48 वर्णों से विशाल शब्दों का भंडार और उससे साहित्य का निर्माण होता है उसी प्रकार संगीत के बारह स्वर और उनके सूक्ष्म रूप, 22 श्रुतियों से रागों की निर्मिती होती है। जिस प्रकार शब्दों के निर्माण के कुछ नियम होता है उसी प्रकार रागों के निर्माण मे भी कुछ नियम होते हैं।

- राग में प्रयुक्त होने के बाद स्वरों की चार प्रकार की भूमिका बांध दी जाती है, जिन्हें वादी, संवादी, अनुवादी तथा विवादी नामों से संबोधित किया जाता है।

  राग के वादी स्वर की भूमिका राग में राजा के समान होती है।

  "प्रयोगे बहुलः स्वरः वादी राजाऽत्र गीयते" कहा गया है।

  अर्थात वादी स्वर यह राग का प्रधान स्वर होता है, और राग रूपी राज्य में राजा के समान होता है। इसे जीव स्वर भी कहा गया है। वादी स्वर से राग का चलन एवं गायन समय स्थिरकिया जाता है। वादी स्वर से राग की पहचान बनती है।

  संवादी स्वर की भूमिका राग में अमात्य की तरह होती है। वादी स्वर का अनुसरण करता हुआ संवादी स्वर का स्थान राग में दूसरे नम्बर का है। वादी से चौथे या पाँचवे नंबर पर संवादी स्वर का स्थान होता है। जैसे वादी स्वर यदि षडज है तो संवादी स्वर होगा मध्यम (चौथे स्वर की दूरी पर) या पंचम (पाँचवे स्वर की दूरी पर)।

  राग में अनुवादी स्वरों की भूमिका अनुचरों के समान होती है। वादी-संवादी तथा विवादी स्वरों के अतिरिक्त जो स्वर राग में प्रयुक्त होते है, उन्हें अनुवादी कहा जाता है। ये स्वर राग के विस्तार में सहायक होते है।

  विवादी स्वर के लिए सामान्यतः राग में शत्रु समान समान माना जाता है। परन्तु विवादी स्वर की भूमिका केवल शत्रुता का नहीं होता। अगर ऐसा ही होता तो राग के निर्मिती में इसे रखा ही क्यों जाता ? वस्तुतः कहीं-कहीं किसी-किसी राग में इसके अल्प प्रयोग से राग का सौंदर्य वृद्धि होता है। विवादी स्वर को राग के आरोह अवरोह में भी जगह नहीं मिलती। अर्थात वह राग का नियत स्वर नहीं होता। राग में विवादी स्वर का एक नियत स्थान होता है। केवल उसी स्थान पर विवादी स्वर का प्रयोग किया जाता है और उसी से राग की सौन्दर्य वृद्धि होती है। जब तब जहां तहाँ उसके प्रयोग से राग बिगड़ जाता है इसी लिए उसे शत्रु कहा गया है, ताकि गायक वादक उस के प्रयोग से राग के सौन्दर्य वृद्धि में बहुत अधिक प्रलोभित न हो जाएं।

  ''विवादी तु सदा त्याज्यः क्वचित्रान क्रियात्मकः''

  अतः इसे इस तरह समझें कि हिन्तुस्तानी संगीत में राग अपनी सीमा में बंधा हुआ है, अतः विवादी स्वर का प्रयोग उतनी ही मात्रा में करना चाहिए जिससे राग में सौंदर्यवृद्धि हो, तथा राग-हानि न हो, अन्यथा उसे शत्रुतुल्य कहकर छोड़ देना ही उचित है।

- राग की निष्पत्ति में अगला महत्वपूर्ण तत्व है 'वर्ण' तथा 'अलंकार'। वर्ण ऐसी गान विस्तार की शैली है, जिससे स्वरों का संचरण कैसे हो यह समझ में आता है। वर्ण, गाने की क्रिया को कहा जाता है। ये चार प्रकार के कहे गए है।

"गानक्रियोच्यते वर्णः स चतुर्था निरुपितः"

अर्थात ये चार वर्ण स्थायी, आरोही, अवरोही तथा संचारी के नाम से जाने जाते है। इन्हीं के आधार पर राग में स्वरों का विस्तार होता है, जिससे राग रूप का निर्माण होकर उसमें सौंदर्य की सृष्टि होती है। जहाँ स्वरों का आरोह हो, वहाँ आरोही वर्ण, जहाँ अवरोह हो वहाँ अवरोही वर्ण, जहाँ स्वर स्थिर तथा सम रहें, वहाँ स्थायी वर्ण, तथा जहाँ सब वर्णों का सम्मिलित प्रयोग हो, वहाँ संचारी वर्ण होता है। वर्णों का विस्तार तीनों स्थानों मन्द्र, मध्य तथा तार में बताया गया है।

इस बात को ऐसे समझें कि राग में कौन कौन से स्वर हों और उसका किस प्रकार से प्रयोग हों वह इन चारों वर्णों से स्पष्ट होता है। जैसे राग यमन में सातों स्वरों का प्रयोग होना तय है परंतु उसके आरोही में स्वरों को सीधे एक के बाद एक लगाने हैं या स्वरों की गति वक्र होनी है यह तय किया जाता है। राग यमन में चूंकि तीव्र मध्यम का प्रयोग होता है तो उसका संवाद मध्य सप्तक के सा के बदले मंद्र सप्तक के नि से अधिक अच्छा बैठता है अतः ये नियम निश्चित किया गया कि यमन का आरोही वर्ण इस प्रकार होगा – नि़ रे ग म॑ प ध नि सां।

एक और राग अल्हैया बिलावल के उदाहरण को देखें तो इसके अवरोह वर्ण में स्वर की व्यवस्था इस प्रकार से तय की गई है - सां नि ध प ध नि ध प म ग म रे सा - तो आप देख सकते हैं की स्वरों की व्यवस्था कैसी हो यह अवरोही वर्ण में स्पष्ट बता दिया गया है।

संचारी वर्ण में ये व्यवस्था बताई जाती है कि किसी भी राग में विस्तार करते समय घटक स्वरों का संचरण अर्थात चलन कैसी होनी चाहिए।

- **अलंकार-**

अलंकार का सामान्य अर्थ है, आभूषण। जिस प्रकार आभूषण से स्त्री का सौंदर्य बढ़ता है, उसी प्रकार संगीत में अलंकारों के प्रयोग से गीत का तथा राग का सौंदर्य खिल उठता है।

शास्त्रों में कहा गया है कि अलंकार रहित गीति की वही अवस्था होती है, जो चंद्र के बिना रजनी, जल के बिना नदी, पुष्प के बिना लता, और आभूषणों के बिना स्त्री की होती है। इससे स्पष्ट होता है, कि अलंकार को राग का बाहरी अलंकरण मात्र नहीं माना गया बल्कि राग के निर्मिती में उसे एक घटक माना गया है जो राग के स्वरों के संचरण पर निर्भर होता है। राग के आरोही – अवरोही वर्ण में स्वरों की ब्यवस्था हो जाने के बाद इसके ध्वनिगत अलंकार जैसे मींड़, गमक, मुरकी यदि के प्रयोग का निश्चित किया जाता है जिस से राग का रस भी निर्धारित होता है। स्वरलंकार से राग का सौन्दर्य उजागर होता है।

- **आलाप-**

आलाप का राग विस्तार में महत्वपूर्ण स्थान है। जब कोई गायक या वादक अपना गायन या वादन आरम्भ करता है, तो राग के अनुसार उसके स्वरों का विस्तार करता है। आलाप वर्ण, अलंकारों पर आश्रित होते है। अपनी अपनी तालीम के अनुसार गायक या वादक अपनी राग प्रस्तुति में आलाप से राग की बढ़त कर उसे एक संजीव रूप देता है। ग्रह, अंश, मन्द्र, तार, न्यारा, अपन्यास, अल्पत्व, बहुत्व, षाडवत्व औडुवत्व के नियमों के साथ जब राग में आलाप का प्रयोग किया जाता है, तब उसे रागालाप कहते है। आलाप का एक अन्य प्रकार है, जिसे रूपकालाप कहते है।

आलाप गायन राग में ताल के साथ (बंदिश की प्रस्तुति में) तथा ताल के बिना भी अर्थात् राग के आरम्भ में प्रस्तुत किया जाता है, किन्तु यह राग विस्तार के लिए आवश्यक एवं महत्वपूर्ण घटक है, जिससे रागरूप

स्पष्ट होता है। हमारे संगीत में कुछ राग ऐसे भी है, जो आलाप प्रधान है, जैसे दरबारी कान्हडा, यमन, पूरिया आदि। इन रागों का सौंदर्य आलाप से ही प्रस्फुटित होता है। आलाप के पश्चात् राग में तान का प्रयोग होता है।

- **तान-**

तान का सामान्य अर्थ है तानना या विस्तार करना। राग में तान, विस्तार का एक सबल साधन है। राग के विस्तार का एक सबल साधन है। राग के विस्तार के लिए, विविधता दिखाने के लिए तथा नई-नई स्वर रचना ओर संयोगों द्वारा गान-वादन की सजावट के लिए तानों का प्रयोग करते है। जब कोई अलंकार किसी राग के नियमों में बांधकर प्रयोग में लाया जाता है, तब वही तान कहलाता है। राग के नियमों के अनुसार प्रयुक्त होने वाले शुद्ध विकृत स्वर, आरोह-अवरोह इत्यादि के अनुसार ही तान का प्रयोग किया जाता है। इस प्रकार तान, नियमबद्ध होती है। तानों के कई प्रकार होते है, जैसे सपाट तान, या शुद्ध तान, कूटतान, मिश्रतान, वक्रतान, वोलतान आदि इनका प्रयोग विलंबित तथा द्रुत दोनों प्रकार की बंदिशों में किया जाता है।

- विशिष्ट स्वर संगति -

राग के अवयव को निर्माण करने में वादी और संवादी के अतिरिक्त अनुवादी और बिवादी स्वरों की भूमिका बहुत महत्वपूर्ण होती है जो विशेष स्वरसंगति बनाते हुए राग की अपनी पहचान बनाने मे सहायक होते हैं। दूसरे शब्दों में ये राग में प्रयुक्त होने वाले ऐसे छोटे-छोटे स्वर समुदाय होते है, जिनके बिना राग पूर्ण रूप से स्पष्ट नही हो सकता। अपनी विशेषता के साथ अलग अलग रागों में अलग-अलग स्वरसंगतियों का प्रयोग होता है, जो राग की अपनी विशेषता कायम रखने में सहायक होते हैं।

- **बंदिश**

राग को प्रस्तुत करने के लिए साहित्यिक पदों की जरूरत होती है। आधुनिक युग में साहित्यिक पदों को बंदिश कहा जाता है क्योंकि ये पद किसी एक राग और ताल मे बंधे हुए होते हैं। प्राचीन काल में बंदिश के बदले प्रबंध शब्द का प्रयोग किया जाता था तथा प्राचीन ग्रंथों में कई प्रकार के प्रबंध पाए जाते हैं। प्रबंध शब्द का अर्थ भी यही था अर्थात राग व ताल में व्यवस्थित साहित्यिक पद। प्रबंध शब्द संस्कृत भाषा का है और बंदिश हिन्दी और उर्दू भाषा का है। प्राचीन प्रबंधों में कई भाग होते थे पर आधुनिक बंदिश के केवल दो भाग होते हैं स्थायी तथा अंतरा। बंदिशों की भूमिका राग को जीवित रखने के लिए बहुत ही महत्वपूर्ण है। बंदिशों में ही राग का स्वरगत रूप निहित होता है। यदि कोई राग अवलुप्ति की अवस्था में हो तो उसके बंदिशों के सहारे उसे पुनः जीवित किया जा सकता है। इसके अतिरिक्त राग के निष्पादन के लिए अर्थात राग गायन के लिए भी बंदिश का ही सहारा लिया जाता है।

रागों की जाति-

राग का निर्माण थाट से होता है। थाट में सात स्वरों का होना आवश्यक होता है, किन्तु राग में यह आवश्यक नहीं कि सात ही स्वर हों, किसी थाट के सात स्वरों में से पांच, छः या सात स्वरों को लेकर जब कोई राग निर्मित होता है, तो जितने स्वर उस थाट में से लिए जाते है उन्हीं के आधार पर उसकी जाति निश्चित की जाती है।

इस प्रकार स्वरों की संख्या के अनुसार रागों के तीन भेद मानें गए हैं, जिन्हें औडुव, षाडव और संपूर्ण कहते हैं।

1 औडुव जाति का राग - जब किसी थाट में से कोई दो स्वर घटाकर (वर्जितकर) किसी राग की उत्पत्ति होती है अर्थात् जिस राग में पांच स्वर लगते है, उसे औडुव राग कहते है जैसे भूपाली, दुर्गा आदि।

2 षाडव जाति का राग - जिस राग में छः स्वरों का प्रयोग होता है, उसे षाडव जाति का राग कहते है जैसे मारवा, पूरिया आदि।

3 सम्पूर्ण जाति का राग - जिन रागों में सातों स्वरों का प्रयोग किया जाता हैं, उन्हें संपूर्ण जाति का राग कहा जाता है। जैसे यमन, भैरव आदि।

उपर्युक्त बताई हुई जातियों के रागों के आरोह तथा अवरोह में क्रमशः पांच, छः तथा सात स्वर हैं किन्तु कुछ राग ऐसे भी है, जिनके आरोह में छः तथा अवरोह में सात स्वर लगते हैं, अथवा आरोह में सात तथा अवरोह में पांच स्वरों का प्रयोग होता है, ऐसे रागों को के लिए ग्रन्थकारों ने उपर्युक्त तीन जातियों में से हर एक जाति की तीन-तीन उपजातियाँ बना दी है। ये जातियाँ इस प्रकार हैं -

संपूर्ण संपूर्ण, सम्पूर्ण षाडव, सम्पूर्ण औडव

षाडव संपूर्ण, षाडव षाडव, षाडव-औडव

औडव संपूर्ण, औडव-षाडव, औडव-औडव

इस प्रकार तीन जातियों से नौ उपजातियों की उत्पत्ति हुई।

1. जिस राग के आरोह अवरोह में सातों स्वरों का प्रयोग होता है, उसे संपूर्ण जाति का राग कहते है।
2. जिस राग के आरोह में सात तथा अवरोह में छः स्वरों का प्रयोग होता है, उसे **संपूर्ण-षाडव** जाति का राग कहते हैं।
3. जिसके आरोह में सात एवं अवरोह में पांच स्वर हों उसे **संपूर्ण-औडव** जाति का राग कहते हैं।
4. आरोह में छः तथा अवरोह में सात स्वर हो तो वह **षाडव-संपूर्ण** जाति का राग कहलाता है।
5. आरोह तथा अवरोह दोनों में छः स्वर हों तो वह **षाडव-षाडव** जाति का राग कहलाता है।
6. आरोह में छ: तथा अवरोह में पांच स्वर हों तो वह **षाडव-औडव** जाति का राग कहलाता है।
7. जिसके आरोह में पांच एवं अवरोह में सात स्वर हों तो वह **औडुव-सम्पूर्ण** जाति का राग कहलाता है।
8. जिसके आरोह में पांच एवं अवरोह में छः स्वर हों तो वह **औडुव-षाडव** जाति का राग कहलाता है।
9. आरोह तथा अवरोह दोनों में पांच स्वरों का प्रयोग हों तो वह **औडव-औडव** जाति का राग कहलाता है।

इस प्रकार इन जातियों से अनेक रागों की उत्पत्ति होती है।

सारांश-

राग अध्ययन से यह ज्ञान होता है कि यह विधा, शास्त्रीय तथा प्रायोगिक दोनों ही पक्षों के साथ सम्बंधित है, अतः इसके अध्ययन से हमें दोनों ही पक्षों का ज्ञान होता है। यह वह केंद्र बिंदु है, जिस पर समस्त हिन्दुस्तानी संगीत की नींव स्थिर है। राग गायन में प्रयुक्त होने वाले तत्व जैसे नाद, स्वर, श्रुति, वर्ण, अलंकार, स्थाय, आलाप, तान आदि का प्रयोग उनके शास्त्रीय पक्ष के साथ होता है, जो राग विस्तारीकरण का प्रमुख माध्यम है।

राग अपनी सीमा से बंधा हुआ होता है। राग के अपने लक्षण होते है, जिनके आधार पर राग रूप स्पष्ट होता है तथा राग एक दूसरे से भिन्न होते हैं। राग में प्रयुक्त होने वाले स्वरों के आधार पर राग की नौ जातियाँ होती है, जिनसे अनेक रागों का निर्माण होता है और जो राग परम्परा को समृद्ध बनाता है।

स्वमुल्यांकन प्रश्न -

प्रश्न 1. निम्न लिखित प्रश्नों के विस्तृत रूप से उत्तर दें -

1) संगीत में राग का क्या महत्व है? वर्णन कीजिए
2) राग की निर्मिति में प्रयुक्त होने वाले तत्वों का वर्णन कीजिए
3) राग लक्षणों को विस्तार से समझाइए

प्रश्न 2. निम्नलिखित विषयों पर टिप्पणी लिखिए -

1) राग के नियम

2) रागों की जाति

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY